शोषण को वैधानिकताः एक उदाहरण*

बीरेन्द्र सिंह रावत, फिरोज़ अहमद एवं मनोज चाहिल

विधेयक संबंधी तथ्य

4 दिसंबर, 2015 को दिल्ली की विधानसभा ने शिक्षा संबंधी तीन विधेयक पारित किए। इन विधेयकों का उद्देश्य दिल्ली विद्यालय शिक्षा अधिनियम, 1973 (आगे से अधिनियम 1973 कहा जाएगा) तथा शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 में संशोधन करना है। इनमें से विधेयक संख्या 10 दिल्ली विद्यालय शिक्षा अधिनियम, 1973 में संशोधन करने से संबंधित है। इस आलेख में हम विधेयक संख्या 10 संबंधी तथ्यों, संदर्भ तथा इसके संभावित असर का विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं।

इस विधेयक के जरिए अधिनियम 1973 के एकाधिक खण्डों को संशोधित किया जा रहा है। खण्ड 10 के उपखण्ड (1) का संशोधित रूप कहता है, ''निजी मान्यता प्राप्त विद्यालय के कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उसके सेवा के निबंधन और शर्तें वे होंगी जो विहित की जाएं।'' अधिनियम 1973 के अनुसार निजी विद्यालय के कर्मचारियों का वेतन तथा अन्य सभी लाभों सहित भत्ते सरकारी विद्यालय के कर्मचारियों से कम नहीं होंगे। इतना ही नहीं, अधिनियम 1973 का यह खण्ड यह भी कहता है कि जिन निजी विद्यालयों के कर्मचारियों को सरकारी विद्यालयों के समकक्ष कर्मचारियों की तुलना में वेतन और अन्य लाभ कम मिल रहे हैं, सरकार उन विद्यालयों की प्रबंध समिति को लिखित रूप में यह कहेगी कि वे अपने कर्मचारियों को समान स्तर का वेतन और अन्य लाभ दें। अधिनियम 1973 आदेश का पालन नहीं करने पर प्रबंधन के खिलाफ कार्रवाई की बात भी करता है। इसके खण्ड 24 के उपखण्ड 4 में दी गई मान्यता संबंधी शर्तों में से एक यह है कि मान्यता चाहने वाले स्कूलों की वित्तीय क्षमता ऐसी होनी चाहिए कि वे अपने कर्मचारियों को सरकारी स्कूल के कर्मचारियों के बराबर वेतन और अन्य लाभ दे सकें। अधिनियम 1973 के खण्ड 24 के उपखण्ड 4 में अपने कर्मचारियों को सरकारी स्कूल के कर्मचारियों के बराबर का वेतन और अन्य लाभ न दे सकने वाले स्कूलों की मान्यता रद्द करने का प्रावधान है। लेकिन संशोधित रूप में इस प्रावधान को अंत में रखा गया है। अब कर्मचारियों को वेतन आदि का न्यायोचित भुगतान न करने वाले स्कूलों के कर्मचारियों को राज्य से किसी प्रकार का संरक्षण नहीं मिलने वाला और उन्हें स्कूल मालिकों के रहमोकरम पर छोड़ दिया गया है। अर्थात् राज्य अपनी संवैधानिक और नैतिक जिम्मेदारी से मुक्त होकर निजी स्कूल मालिकों के हक में स्कूल के कर्मचारियों के अधिकारों की बलि दे रहा है।

इस विधेयक में दिए गए 'लक्ष्यों और कारणों का विवरण' में कहा गया है, ''...अधिनियम 1973 में सिर्फ दो दंडात्मक प्रावधान उपलब्ध हैं जो कि विद्यालय की मान्यता रद्द करना तथा विद्यालय के प्रबंधन को सरकारी नियत्रंण में लेना है। ये दोनों अत्यधिक कठोर कदम हैं जो प्रभावी दंडात्मक कार्यवाही को बाधित करते हैं। ...प्रस्ताव किया जाता है कि ...अधिनियम 1973 में कुछ ...प्रावधान शामिल किए जाएं, ताकि इसे

अधिक प्रभावकारी बनाया जा सके।'' अधिनियम 1973 की तुलना में जिन प्रावधानों को 'अधिक प्रभावकारी' बताया जा रहा है उनमें लिखित चेतावनी तथा आर्थिक दंड लगाना शामिल है। अधिनियम 1973 के खण्ड 10 के उपखण्ड (1) में किए जा रहे बदलावों को शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 के 'अनुरूप' बताया जा रहा है।

यदि हम शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 के खण्ड 23 के उपखण्ड (3) के साथ अधिनियम 1973 के खण्ड 10 के उपखण्ड (1) में किए जा रहे बदलावों का मिलान करें तो हमें पता चलेगा कि दिल्ली सरकार ने 'शिक्षकों' के बदले 'कर्मचारी' शब्द का इस्तेमाल करके उसमें 'मान्यता प्राप्त निजी स्कूलों' जोड़ दिया है। वास्तव में दिल्ली सरकार ने शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 की मंशा को समझकर फिलहाल उसे सिर्फ निजी स्कूलों के कर्मचारियों पर लागू करने हेतु यह संशोधन पारित किया है। स्कूल के कर्मचारियों के पक्ष में उनके वेतन तथा अन्य भत्तों को लेकर जैसी स्पष्टता अधिनियम 1973 में है वैसी न तो शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 में है और न ही दिल्ली सरकार द्वारा पारित विधेयक संख्या 10 में है।

संशोधन का संदर्भ

किसी भी अन्य कानून की तरह इस संशोधन को समझने के लिए भी हमें इसे उन अन्य वृहत् बदलावों व प्रक्रियाओं के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा जिसके इर्द-गिर्द इसे रचा जा रहा है। फिलवक्त हम राजनैतिक समझ की कम-से-कम तीन ऐसी कड़ियां पहचान सकते हैं जो इस संशोधन में निहित हैं और इसे दिशा दे रही हैं। भले ही हम यहां इन कड़ियों के उदाहरण मुख्यतः राज्य सरकार के संदर्भ में प्रस्तुत करें लेकिन हमारा मानना है कि ये कड़ियां दिल्ली सरकार या उसके सत्तारूढ़ दल तक सीमित नहीं हैं और पिछले दो-ढाई दशक से राज्य के चरित्र को निरंतर निर्देशित कर रही हैं।

पहली कड़ी हमें शिक्षामंत्री व मुख्यमंत्री के उन अखबारी बयानों में मिलती है जिनमें उन्होंने यह स्पष्ट घोषणा की कि उनकी सरकार शिक्षा में निजीकरण के खिलाफ नहीं है। निजी स्कूलों के प्रबंधकों के विरोध पर प्रतिक्रिया करते हुए शिक्षामंत्री ने आश्वस्त किया कि सरकार न सिर्फ निजीकरण के विरुद्ध नहीं है बल्कि उसे निजी स्कूलों से कोई शिकायत भी नहीं है (द हिन्दू, नवम्बर 21, 2015)। इसी तर्ज पर स्वयं मुख्यमंत्री ने कहा कि वे नहीं चाहते कि ये स्कूल बंद हों। इस हेतु ही निजी स्कूलों में शिक्षकों को कुशल कामगारों के न्यूनतम दैनिक भत्ते के समान वेतन दिलाने का कानून लाया जा रहा है। सार्वजनिक शिक्षा को मजबूत करने का दावा करना और दूसरी तरफ निजी स्कूलों के प्रबंधन, मालिकों के पक्ष में कानून बनाना सरकार की कथनी व करनी के बीच में एक विरोधाभास दिखाता है। इस कड़ी को हम सरकारों द्वारा सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था के प्रति अपनी जिम्मेदारी से पलटकर इसे निजी सेवाक्षेत्र में बदलने के आग्रह के रूप में चिह्नित कर सकते हैं।

संदर्भ की दूसरी कड़ी श्रम कानूनों में मजदूरों के हितों के विरुद्ध किए जा रहे बदलावों के रूप में देखी जा सकती है। पिछले दिनों गुजरात सरकार के श्रम कानूनों संबंधी जिस विधेयक को राष्ट्रपति द्वारा मंजूरी दी गई उसमें मजदूरों व प्रबंधन के बीच विवादों को अदालत के बाहर निपटाने का प्रावधान है। गुजरात श्रम व रोजगार मंत्री ने इसके पक्ष में यह कहते हुए दलील दी कि इससे 'अनावश्यक' मुकदमों में कमी आएगी (द हिन्दू, दिसम्बर 02, 2015)। मजदूरों के हितों की सुरक्षा के लिए बनाए गए कानूनों को अनावश्यक बताना इस कड़ी के एक और आग्रह को बयान करता है। रोजगार को असंगठित व अनियमित क्षेत्र की तरफ धकेलने का एक और संदेश देते हुए राज्य सरकार ने स्कूलों के प्रधानाचार्यों को गैर-शैक्षणिक कार्यों के लिए अनियमित आधार पर कर्मचारियों की नियुक्तियां करने का अधिकार देने की घोषणा की है (दैनिक जागरण, दिसम्बर 05, 2015)। इसके लिए सेवानिवृत्त कर्मचारियों को ठेके पर नियुक्त करने की योजना भी बनाई गई है। ऐसा करके सरकार ने साफ कर दिया है कि अब सिद्धान्तः सार्वजनिक क्षेत्र को 'सुधारने' की कवायद ठेके पर अस्थायी नियुक्तियों के हवाले से ही होगी। इस कड़ी को हम श्रम कानूनों में मजदूर हितों के खिलाफ हो रहे संशोधनों के रूप में देख सकते हैं।

तीसरी कड़ी उस आग्रह में प्रकट होती है जो उपर्युक्त दोनों कड़ियों को दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करता है। यह वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार सामाजिक परिघटना व राजनैतिक समस्या को निजी कमजोरी या खूबी के

आधार पर परिभाषित करके विषमता तथा सत्ता के बुनियादी सवालों को दबा दिया जाता है। इसका एक उदाहरण दिल्ली के शिक्षा निदेशालय के 15 जून, 2015 के उस सर्कुलर में प्रकट होता है जिसमें प्रधानाचार्यों को निर्देशित किया गया कि वे अभिभावकों को यह समझाएं कि 9वीं कक्षा के नतीजों में आई गिरावट की वजह 'विद्यार्थियों का मेहनत नहीं करना है'। यह सर्कुलर ढांचागत समस्याओं और विषमताओं पर पर्दा डाल देता है। इसी तरह शिक्षा निदेशालय का 13 अप्रैल, 2015 का एक अन्य सर्कुलर नैतिक मूल्यों के विकास के लिए शिक्षकों को विपसना अपनाने और उसकी कार्यशाला में भाग लेने के लिए आमंत्रित करके 'नैतिकता' को मात्र एक व्यक्तिपरक मसले तक सीमित कर देता है। राज्य सरकार ने जिन स्वयंसेवी संगठनों को सार्वजनिक स्कूलों की बेहतरी के नाम पर अपने स्कूलों में दखल देने की सुनियोजित भूमिका प्रदान की है, वे भी बच्चों के 'कम' सीखने को मात्र शिक्षकों के कार्य से जुड़ी एक नितांत अनैतिहासिक समस्या के रूप में उठाते हैं और इस संदर्भ में राज्य की नीति व सामाजिक-राजनैतिक ढांचे की कोई बात नहीं करते। इन संस्थाओं के बौद्धिक व आर्थिक तार इस आग्रह से जुड़ते हैं कि राज्य को स्कूलों को नहीं बल्कि निजी उपभोक्ताओं के रूप में बच्चों/अभिभावकों को फंड करना चाहिए जिससे कि वे अपनी च्वॉयस (पसंद) के निजी स्कूलों में प्रवेश ले सकें। सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था के विचार से इतना साफ विरोध रखने वाली संस्थाओं की 'सहायता' से सार्वजनिक तंत्र को कथित तौर पर मजबूत करने का दावा करना इसी कड़ी का एक हिस्सा है।

'पीड़ित को ही दोष देने' की नव-उदारवादी नीति के पक्ष में डटने का चिंताजनक उदाहरण दिल्ली सरकार द्वारा प्रकाशित विज्ञापन (द हिन्दू, 25 नव., 2015, पृ. 20) के इस उद्धरण में भी मिलता है जिसमें शिक्षामंत्री नागरिकों को संबोधित करते हुए कहते हैं, *''दिल्ली में कई तरह के स्कूल हैं जो समाज के अलग-अलग तबके के बच्चों को पढ़ाते हैं। ...कुछ स्कूल 500 रुपये महीने से भी कम फीस लेते हैं वहीं दूसरी ओर कुछ अन्य स्कूल 10,000 रुपये महीने तक की फीस भी लेते हैं। जाहिर बात है कि यह स्कूल अपने टीचर्स को एक जितनी तनख्वाह नहीं दे सकते।''*

विज्ञापन से यह स्वतःसिद्ध है कि दिल्ली सरकार गैर-बराबरी में विश्वास करती है और उसके द्वारा किया गया संशोधन उसके इसी विश्वास का नियमीकरण है। सरकार के विज्ञापन के उपर्युक्त अंश से स्पष्ट है कि सरकार को समाज में व्याप्त बच्चों की जातीय, वर्गीय, लैंगिक असमानता के अनुसार चलाई जा रही बहुपरती स्कूली व्यवस्था से कोई ऐतराज नहीं है। विज्ञापन के इस अंश से यह भी साफ है कि सरकार मानती है कि शिक्षा में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसके कारण इसे सार्वजनिक हित का सरोकार माना जाए। अपने विज्ञापन में सरकार यह भी मान रही है कि निजी स्कूल शिक्षकों और शिक्षिकाओं का शोषण करते हैं। सरकार का कहना है कि उनको 'शोषण से बचाने' के लिए वह इतना ही कर सकती है कि निजी स्कूलों द्वारा शिक्षकों और शिक्षिकाओं के शोषण करने को ही वैधता प्रदान कर दी जाए। और वह ऐसा ही करने जा रही है! विज्ञापन के अनुसार, *''...मजबूरन यह स्कूल अभी तक टीचर्स के कागज पर फर्जी साइन करवाता था कि उन्हें 40 हजार रुपये महीना तनख्वाह दे दी गई है। लेकिन हकीकत में ...केवल 5000 से 8000 रुपये महीना ही देता था। ...टीचर जब भी सरकार के पास शिकायत करने आते थे तो सरकार भी कोई कार्रवाई नहीं कर पाती थी। क्योंकि सरकार यदि स्कूल को... बाध्य करती, तो यह स्कूल ही बन्द हो जाता।''* चूंकि दिल्ली सरकार शोषण और लूट को ही कानूनी मान्यता देने जा रही है तो अब शोषण और भ्रष्टाचार दोनों का अंत हो जाएगा!

विधेयक के संभावित प्रभाव

इस अधिनियम से पूर्व आज तक जहां निजी स्कूलों में कम वेतन पर अप्रशिक्षित शिक्षक और शिक्षिकाएं नौकरी पाते रहे हैं वहीं अब इस अधिनियम के लागू हो जाने के पश्चात् इनमें कम वेतन पर प्रशिक्षित शिक्षकों और शिक्षिकाओं को कानूनी रूप से रखा जा सकेगा। यह अधिनियम अब निजी स्कूलों द्वारा शिक्षकों के शोषण को वैधता प्रदान करेगा। शिक्षिकाओं के ऊपर इसकी दोहरी मार पड़ेगी। पितृसत्तात्मक समाज में 'शिक्षण' को महिलाओं के लिए एक 'उपयुक्त' पेशा समझा जाता रहा है और इसमें सामाजिक आग्रहों के चलते महिलाओं की भागीदारी पुरुषों की अपेक्षा अन्य पेशों की तुलना में कहीं ज्यादा बढ़ी है। इस संदर्भ में यह संशोधन विशेषकर महिलाओं (शिक्षिकाओं) के आर्थिक स्वावलम्बन पर कुठाराघात करेगा।

इस अधिनियम के लागू होने का एक (दुष्)परिणाम यह होगा कि पहले से ही कुक्करमुत्तों की तरह फल-फूल रहे निजी स्कूलों की संख्या में और वृद्धि होगी। 'कम लागत' निजी स्कूलों की संख्या में बढ़ोतरी होगी जिसके लिए बहुत से स्वयंसेवी संगठन व अन्तर्राष्ट्रीय वित्त-पोषित संस्थाएं लगातार वकालत कर रही हैं। इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता कि सरकार के ऊपर इस बिल को पास कराने में ऐसी संस्थाओं का हाथ रहा हो। वैसे भी जब सरकार की शिक्षा सलाहकार समिति में शिक्षा को मुक्त बाजार में बेचने के पक्षधर ऐसे स्वयंसेवी संगठनों के लोग भरे हुए हों तो यह लाजिमी है कि वे सरकार को ऐसी ही सलाह देंगे जो उनके अपने हितों को साधें।

ध्यातव्य है कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 विद्यालय के लिए कुछ मानदण्डों का निर्धारण करता है, जिनमें खेल के मैदान, पुस्तकालय आदि शामिल हैं जो निजी स्कूल इन मानदण्डों को पूरा नहीं करते हैं, वे कैसे इन शर्तों को पूरा कर पाएंगे जबकि वे पहले से ही संसाधनों की कमी का रोना रोते आए हैं! भाजपा नीत वर्तमान राजग सरकार के आने से पूर्व ही इस बात का गुणगान किया जाता रहा है कि भारत के विकास के लिए गुजरात मॉडल को लागू किया जाएगा। यह वही गुजरात मॉडल है जिसमें शिक्षकों और शिक्षिकाओं को पूरा वेतन नहीं दिया जाता और वे बहुत ही कम वेतन पर अध्यापन कार्य कर रही हैं। गुजरात मॉडल के समर्थकों के तर्कों की तर्ज पर यह हैरानी की बात नहीं होगी कि ऐसे निजी स्कूलों को बंद होने से बचाने के लिए, बच्चों के हितों को 'सुरक्षित' करने के नाम पर, उपर्युक्त मानदण्डों को भी शिथिल कर दिया जाए। जब शिक्षकों को पर्याप्त वेतन ही नहीं मिलेगा तो 'शिक्षण' के पेशे में लोगों की रुचि में कमी आएगी और इसका असर शिक्षण प्रशिक्षण संस्थाओं तथा उनकी गुणवत्ता पर भी पड़ेगा। एक तो पहले से ही शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थाओं का हाल खस्ता है, ऊपर से इस प्रकार शिक्षिकाओं और शिक्षकों की सामाजिक स्थिति और हकों पर होने वाले हमलों से ये संस्थाएं और भी बुरी स्थिति में पहुंच जाएंगी।

इस तरह के कानून से उन संस्थाओं व स्वार्थों को मजबूती मिलेगी जो एजूप्रेन्यॉरशिप[1] को बढ़ावा देते हैं। मुक्त बाजार के इन पैरोकारों के मुताबिक शिक्षा का क्षेत्र भी बाजार के उन अन्य क्षेत्रों की तरह होना चाहिए जहां राज्य का नियंत्रण न हो तथा इस क्षेत्र में प्रवेश (निवेश) व विस्तार (लाभ) के लिए मापदण्डों तथा कानूनी शर्तों की कोई पाबंदी नहीं होनी चाहिए। 12वी पंचवर्षीय योजना का 'एप्रोच पेपर' भी इस चलन की जमीन तैयार करता है। इसके अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में मुनाफा कमाने पर रोक लगाने वाली वर्तमान नीति की पुनर्समीक्षा करने की आवश्यकता है। जाहिर है कि यह पूरी कवायद शिक्षा को सार्वजनिक क्षेत्र और सरकार की जिम्मेदारी से निकालकर बाजार की वस्तु बनाकर निजी हाथों में सौंपने की है। जहां पहले निजी स्कूल शिक्षिकाओं और शिक्षकों को वास्तव में उचित वेतन न देकर कागज पर पूरा वेतन देने की बेईमानी करते थे वहीं अब ये नैतिक रूप से यह बेईमानी करने से बच जाएंगे! अब सरकार उन्हें इसके लिए अधिकार दे देगी कि वे कानून के दायरे में अपने शिक्षकों और शिक्षिकाओं का शोषण कर सकें।

अंत में, सार्वजनिक स्कूलों में पढ़ाने वाले बहुत से शिक्षक/शिक्षिका साथियों को शायद यह लग रहा होगा कि यह कानून सिर्फ निजी स्कूल के शिक्षकों/शिक्षिकाओं तक ही महदूद है और इसलिए उन्हें इसका विरोध करने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन यह उनका भ्रम ही होगा, क्योंकि इसका अगला शिकार वे ही होंगे। हमारा यह मानना है कि राज्य की नीतियों का यह चलन अगर जारी रहा तो यह सिर्फ निजी स्कूलों के शिक्षकों तक ही सीमित नहीं रहेगा वरन् देर-सवेर सरकारी स्कूलों के शिक्षिकाएं और शिक्षक भी इसकी जद में आएंगे। ◆

* यह आलेख 16 दिसम्बर, 2015 को जनसत्ता में प्रकाशित आलेख का विकसित एवं विस्तृत रूप है।

[1] यह शब्द एजूकेशन (शिक्षा) तथा ऑन्ट्रोप्रोन्यॉरशिप (उद्योग-धंधा) का संयोजन है जो स्कूल खोलने और चलाने को किसी भी अन्य व्यवसाय के समान देखने के आग्रह को साफ दर्शाता है।

लेखक परिचयः बीरेन्द्र सिंह रावत दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग में कार्यरत हैं।
मनोज कुमार चाहिल दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग में शोधार्थी हैं।
फिरोज अहमद दिल्ली में स्कूल शिक्षक हैं।